डॉ. राधाकृष्णन के शैक्षिक उपागम का अध्ययन

डॉ. कुलदीप मिश्रा

सहायक आचार्य, श्री अग्रसेन स्नातकोत्तर शिक्षा महाविद्यालय, केशव विद्यापीठ, जामडोली, जयपुर

सारांश

प्रस्तुत शोध पत्र डॉ. राधाकृष्णन के शैक्षिक उपागम के अध्ययन पर आधारित है। डॉ. राधाकृष्णन ने छात्र संकल्पना, शिक्षक संकल्पना, छात्र–शिक्षक संबंध, सामान्य शिक्षा, उदार शिक्षा, व्यवसायिक शिक्षा, अध्यापकों की शिक्षा, धार्मिक शिक्षा, स्त्री शिक्षा, विश्वविद्यालयी शिक्षा व्यवस्था के संदर्भ में अपने महत्वपूर्ण विचार प्रस्तुत किये। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के अध्यक्ष के रूप में उन्होंने विश्वविद्यालय शिक्षा के विभिन्न पक्षों का अध्ययन किया। डॉ. राधाकृष्णन ने न केवल शैक्षिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया बल्कि उसे वास्तविक शैक्षिक परिस्थितियों व्यवहृत भी किया। उन्होंने व्यवहारिक परिस्थितियों में शिक्षण करके अपने शैक्षिक विचारों का निर्माण किया। डॉ. राधाकृष्णन के स्वतन्त्रता संबंधी विचारों में व्यक्तिवाद तथा आदर्श दोनों का सम्मिश्रण मिलता है। उन्होंने कहा कि किसी देश की शैक्षिक, राजनैतिक, सामाजिक चेतना उस देश के विश्वविद्यालय की श्रेष्ठता के अभिन्न होते है।

प्रस्तावना

डॉ. राधाकृष्णन ने न केवल दर्शन के क्षेत्र में अपितु शैक्षिक क्षेत्र में भी अपने अमूल्य योगदान से लोगों को नई दिशा प्रदान की। उन्होंने अपनी बहुमुखी प्रतिभा एवं प्रभावशाली व्यक्तित्व के कारण शिक्षा के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान दिया। डॉ. राधाकृष्णन ने भारतीय दर्शन का पुनरूद्धार करते हुए सनातन एवं शाश्वत में से तत्व ज्ञान को उद्घाटित किया। उन्होंने तर्क विद्या तथा सहज–ज्ञान द्वारा शिक्षा प्रदान करने का प्रयास किया। वे बालक को ज्ञान प्राप्ति हेतु अनुशासित स्वतन्त्रता प्रदान करने के पक्षधर थे। वे नैतिक मूल्यों तथा संस्कृति की रक्षा करने का एकमात्र माध्यम शिक्षा को मानते थें। उन्होंने राष्ट्र भाषा को मातृ भाषा के रूप में प्रतिपादित किया। उन्होंने औपचारिक शिक्षा तथा स्त्री शिक्षा को पुरूष शिक्षा के बराबर दर्जा दिलाने का प्रयास किया। उन्होंने एक 'शिक्षा आयोग' का भी गठन किया। आयोग ने भी धार्मिक शिक्षा तथा सर्व साधारण की शिक्षा को महत्व प्रदान किया। डॉ. राधाकृष्णन के अनुसार हम शिक्षा से सीखते है, स्वयं सीखते है तथा जीवन और उनके अनुभवों से भी सीखते है। इस प्रकार शिक्षा वास्तव में एक औपचारिक सम्प्रत्यय नहीं है। हमारे अनुभव महान शिक्षक की भूमिका निर्वाह करते है। बालक प्रत्येक क्षण अपने घर, समुदाय, पत्र–पत्रिकाओं तथा अन्य तकनीकी माध्यमों से कुछ न कुछ सतत सीखता रहता है। अतः डॉ. राधाकृष्णन ने शिक्षा को शाश्वत जीवन प्राप्ति के साधन के रूप में, सृजनात्मक प्रक्रिया के रूप, आत्मविकास के साधन के रूप में, नैतिक विकास के साधन के रूप में, मानव विकास के साधन के रूप में तथा सामाजिक एवं आर्थिक परिवर्तन हेतु एक महत्वपूर्ण साधन माना है।

अध्ययन का उद्देश्य

1. डॉ. राधाकृष्णन के शिक्षण–उपागम संबंधी विचारों का अध्ययन।
2. डॉ. राधाकृष्णन का शैक्षिक–जगत में महत्वपूर्ण योगदान का अध्ययन।
3. डॉ. राधाकृष्णन का शिक्षण–उपागम के अनुसार पाठ्यक्रम का अध्ययन।
4. डॉ. राधाकृष्णन के शिक्षण–उपागम संबंधी विचारों की वर्तमान में प्रासंगिकता।

संदर्भित साहित्य का विवरण

किसी भी शोध कार्य का अध्ययन करने के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि शोधार्थी अपनी शोध समस्या के समरूप पूर्व में किए गये अन्य शोध कार्यो के बारे में संक्षिप्त जानकारी प्राप्त कर लें। इसी दृष्टिकोण से शोधार्थी ने डॉ. राधाकृष्णन के शैक्षिक उपागम का अध्ययन के संदर्भ में पूर्व शोध अध्ययनों के विषय–वस्तु की जानकारी पुस्तकों, पत्र पत्रिकाओं, शोध प्रबन्ध, लघु शोध प्रबन्ध, इन्टरनेट, शोध अध्ययन एवं प्रकाशित साहित्य के माध्यम से

प्राप्त करने का प्रयास किया है। संक्षेप में उनका विवरण निम्न है– कैला देवी (1982), आर.पी. गुप्ता (1985), शर्मा, मुनेन्द्र (2000), भागवन्ती (1988), शर्मा, उमा रानी (1989), यादव वी.के. (2000),

शोध विधि का चयन

प्रस्तुत शोधकार्य में दार्शनिक विधि, ऐतिहासिक विधि, विश्लेषण एवं विवेचन विधि का प्रयोग किया है।

डॉ. राधाकृष्णन के शैक्षिक उपागम का अध्ययन

डॉ. राधाकृष्णन के शैक्षिक उपागम का अध्ययन निम्नलिखित बिन्दुओं के अन्तर्गत किया गया हैः–

•शिक्षा के संदर्भ में विचार

डॉ. राधाकृष्णन् शिक्षा को व्यक्ति के शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक एवं आत्मिक विकास की प्रक्रिया मानते है तथा शिक्षा को ऐसा साधन मानते हैं जो व्यक्ति तथा समाज को प्रगति देता है एवं विकास को गति प्रदान करता है। डॉ. राधाकृष्णन् मानते हैं कि ज्ञान व्यक्ति के अन्दर निहित है। वह स्वभावः आत्मबोध करने में समर्थ है किन्तु बाह्य विषयों की आसक्ति से व्यक्ति का आत्म तत्व कलुषित रहता है। यही कारण है कि मनुष्य सर्वदा समीपस्थ होने पर भी उस आत्म तत्व का ढ़के हुये दर्पण के समान दर्शन नहीं कर पाता है। शिक्षा द्वारा जब व्यक्ति के इन्द्रिय एवं विषयजन्य रोगादि दोषों के दूर हो जाने पर दर्पण या जल आदि के समान चित्त प्रसन्न–शान्त हो जाता है तब अज्ञान से आवृत्त तथा उसमें विद्यमान यथार्थ तत्व का अनावरण हो जाता है, यही उसकी शिक्षा है। शिक्षा के लिये केवल शिक्षक और शिक्षार्थी ही नहीं वरन् इसके लिये पाठ्यक्रम की भी आवश्यकता होती है। इन दोनों के मध्य होने वाली अन्तःक्रिया को शिक्षा कहते हैं। इससे स्पष्ट होता है कि शिक्षा का स्वरूप आध्यात्मिक एवं धार्मिक है। डॉ. राधाकृष्णन् के अनुसार आध्यात्मिक ज्ञान से भिन्न कोई शिक्षा नहीं है। शिक्षा का महत्व यह भी है कि हमें दूसरों के साथ सहयोग से आपसी सहायता के साथ–साथ रहने का गुण भी विकसित करती है। डॉ. राधाकृष्णन् के अनुसार शिक्षा की उपयोगिता व्यक्ति एवं समाज के ही सन्दर्भ में है। व्यक्ति के लिये शिक्षा को महत्वपूर्ण मानते हुये उनका विचार है कि शिक्षा से मनुष्यों को मोक्ष प्राप्त होता है। अतः शिक्षा प्राप्त कर लेने पर व्यक्ति का आचरण विचार तथा व्यवहार सुसंस्कृत हो जाते हैं। उसका जीवन उत्तरोत्तर उत्कृष्टतर हो जाता है जिससे श्रेष्ठ समाज के निर्माण को बल मिलता है। श्रेष्ठ मानव समाज में ही एक उन्नत राष्ट्र एवं समृद्ध तथा शान्तिमय विश्व की कल्पना निहित है। डॉ. राधाकृष्णन् शिक्षा व ज्ञान को एक–दूसरे का पर्याय मानते हैं तथा शिक्षा को विकास के एक साधन के रूप में स्वीकार करते हैं। इनके अनुसार शिक्षा शाश्वत् जीवन की प्राप्ति का माध्यम है। शिक्षा के द्वारा नैतिक विकास सम्भव है तथा शिक्षा ही आत्म विकास करने का एक सबल साधन है। शिक्षा के द्वारा ही समाज में सामाजिक–आर्थिक परिवर्तन लाये जा सकते है।

इस प्रकार, हम देखते है कि डॉ. राधाकृष्णन् के अनुसार शिक्षा का महत्वपूर्ण आधार आध्यात्मवाद है। मनुष्यों को अपने आध्यात्मिक विकास के लिये अवश्य ही शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये। आधुनिक युग में भौतिकवाद का प्राधान्य होने से शिक्षा को भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति का साधन माना जाता है। अतः आज की शिक्षा का स्वरूप भौतिक होता जा रहा है। ऐसी स्थिति में यदि कहा जाये कि डॉ. राधाकृष्णन की शिक्षा का अब कोई औचित्य नहीं रह जाता है तो यह ठीक नहीं हैं क्योंकि आध्यात्मिकता का महत्व किसी भी युग में सर्वथा समाप्त नहीं होता है। जीवन मूल्यों के निर्धारण में आध्यात्मिक दर्शन के महत्व को डॉ. राधाकृष्णन् स्वीकार करते हुये कहते हैं कि मानव जीवन में जो वर्तमान संकटपूर्ण स्थिति उत्पन्न हुई है, उसका कारण यह है कि मानव चेतना में आपातकाल उपस्थित हो गया है, संगठित एवं पूर्ण जीवन में न्यूनता आ गई है। लोगों की ऐसी प्रवृति हो गई है कि वे आध्यात्मिकता की उपेक्षा कर रहे हैं और बौद्धिकता को बढ़ावा दे रहे है। उनके इस कथन से जीवन में आध्यात्मिकता का महत्व स्पष्ट हो जाता है और शिक्षा में इसकी आवश्यकता भी अनुभव होने लगती है। सभी शिक्षा आयोगों में नैतिक तथा धार्मिक शिक्षा की संस्तुति की गई है। इस प्रकार डॉ. राधाकृष्णन् की शिक्षा के स्वरूप को आधुनिक शैक्षिक सन्दर्भ में अस्वीकार नहीं किया जा सकता है।

•छात्र संकल्पना

विद्यार्थियों के सम्पर्क में रहने तथा उनके दृष्टिकोणों और समस्याओं को समझने के पर्याप्त अवसर डॉ. राधाकृष्णन् को मिले थे। अपने निरीक्षण के आधार पर उन्होंने कहा कि विद्यार्थियों के सामने प्रारम्भ से ही सार्थक जीवन, सामाजिक सेवा, राष्ट्रीय एकता, विश्व बन्धुत्व आदि के उदात्त आदर्श रहने चाहिए जिससे उनके जीवन की दिशा ठीक रहे। उनकी दृष्टि में विद्यार्थियों को दिशा देना, उन्हें ज्ञान और कौशल देने से अधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि सही दिशा मिल जाने पर ज्ञान और कौशल अर्जित किये जा सकते है। गलत दिशा में केवल ज्ञान और कौशल

के मूल्य ही निरर्थक नहीं हो जाते बल्कि वे घातक भी बन सकते हैं। दिशा निर्देशन का कार्य जिस रूप में हमारी शिक्षण संस्थाओं में किया जाता है उससे वे सन्तुष्ट नहीं दिखते क्योंकि विद्यालयों में जितना ध्यान, ज्ञान और कौशल पर दिया जाता है उतना निर्देशन पर नहीं जिसका परिणाम यह है कि अनुशासनहीनता आदि दुर्गण उनके अन्दर पैदा होते हैं जो सारी शिक्षा को निरर्थक बना देते हैं। ऐसे विद्यार्थियों को उन्होंने ''भूत के लिये विश्वसघाती और भविष्य के दुश्मन होते है।'' इस स्थिति की व्याख्या करते हुए वे कहते हैं कि इसका कारण यह कि विद्यार्थियों का ध्यान अपनी संस्कृति की ओर आकृष्ट किया जाता है।

•शिक्षक संकल्पना

डॉ. राधाकृष्णन् शिक्षक को सम्पूर्ण शिक्षा योजना में सर्वाधिक महत्व देते है। शायद यही कारण है कि उनका जन्म दिवस 5 सितम्बर को प्रति वर्ष शिक्षक दिवस के रूप में मनाया जाता है। उनका यह निश्चित मत है कि शिक्षा के उद्देश्यों की प्राप्ति में शिक्षक की भूमिका सबसे अधिक महत्वपूर्ण होती है। हम किस प्रकार की शिक्षा अपने युवकों को देते हैं, बहुत कुछ यह इस बात निर्भर करता है कि हमें किस प्रकार के शिक्षक उपलब्ध हैं। अन्ततोगत्वा शिक्षा का गुण शिक्षक के गुणों पर निर्भर करता है। पंजाब विश्वविद्यालय के दीक्षान्त समारोह में उन्होंने कहा था कि किसी विश्वविद्यालय की महानता या गरिमा का निर्धारण उसकी इमारतों या उपकरणों से नहीं होता बल्कि कार्यरत अध्यापकों की विद्वता या चरित्र से निर्धारित होता है। अध्यापकों से वे आशा करते है कि वे अपना चरित्र आदर्श रखें क्योंकि विद्यार्थी अध्यापकों के चरित्र का अनुकरण करते हैं। वे अपने चरित्र के द्वारा अनेक विद्यार्थियों के चरित्र का निर्माण करते हैं, क्योंकि विद्यार्थियों के लिये उसका महत्व उतना नहीं जो वे पढ़ाते हैं जितना उसका है जो वे है। प्राचीन परम्परा पर बल देते हुए उन्होंने एक बार अध्यापकों से कहा था उन्हें याद रखना चाहिये कि हम देश में अध्यापकों को गुरू या आचार्य कहते हैं। आचार्य से तात्पर्य ही उस व्यक्ति से जिसका आचरण उच्च हो। इसलिये सबसे अधिक बल वे अध्यापकों के आचरण पर देते हैं। इसके साथ–साथ उनका यह भी कथन है कि शिक्षकों को ज्ञानी, जिज्ञासु, अपने छात्रों से स्नेंह रखने वाला होना चाहिए। इन गुणों के आधार पर ही वे शिक्षक की वास्तविक भूमिका अदा कर पायेंगे। यदि वे वास्तव में आधुनिक भारत के राष्ट्र निर्माता होना चाहते हैं तो सबसे पहले उन्हें प्रगतिशील विचारों और आधुनिक दृष्टिकोण को अपनाना होगा, तभी वे विद्यार्थियों के जीवन में प्रवेश कर पायेंगे।

•छात्र शिक्षक सम्बन्ध :

समस्त विद्यालय व्यवस्था में जिस अभिकरण या व्यक्ति से शक्ति का संचार होता है वह गुरू कहलाता है और जिसकी आत्मा में यह शक्ति संचरित होती है उसे शिष्य कहते है। डॉ. राधाकृष्णन की शिक्षा में गुरू छात्र (शिष्य) के अज्ञान का आवरण हटा उसे ज्ञान की प्राप्ति कराता है और शिष्य अपने प्रयासों के द्वारा गुरू से ज्ञानोपार्जन कर अपने जीवन के परम लक्ष्य–मुक्ति को प्राप्त करता है। अतः अध्यापक तथा विद्यार्थी, ये शिक्षा के दो प्रमुख अंग है और इन दोनों के मध्य सम्पन्न होने वाली अन्तःक्रिया शिक्षा है। डॉ. राधाकृष्णन् ने शिक्षक की एक महान् व्यक्तित्व के रूप में कल्पना की है। गुरू को केवल सैद्धान्तिक रूप से ग्रन्थ का ज्ञाता ही नहीं होना चाहिये। वरन् उसे स्वयं ब्रह्यानुभूति से सम्पन्न होना चाहिये। उसमें नैतिक गुणों तथा चारित्रिक सबलता का पूर्ण विकास होना चाहिये। अतः मानसिक शान्ति एवं जितेन्द्रियता तथा सब प्रकार के भोगों से विरक्ति व अंहकार शून्यता और परोपकारशीलता आदि गुण अध्यापक के आभूषण हैं। इन नैतिक गुणों के साथ ही अध्यापक में शैक्षिक योग्यता, अध्यापन कुशलता तथा अध्ययन प्रियता की उत्कृष्टता भी होनी चाहिये। डॉ. राधाकृष्णन के अनुसार शिक्षक को छात्र का पथ–प्रदर्शक होना चाहिये। शिक्षक–शिष्य को उन सभी उपायों का सुझाव देता है जिनका अवलम्बन करके शिष्य आत्म–कल्याण की प्राप्ति कर लेता है। इसलिये शिक्षा में गुरू का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। डॉ. राधाकृष्णन शिक्षण को शिक्षक का व्यवसाय न मानकर उसका धर्म मानते हैं। अतः शिक्षण के लिये उसे सदैव तत्पर रहना चाहिये तथा उसे किसी भी उपाय से शिष्य को कृतार्थ करना चाहिये। डॉ. राधाकृष्णन् के विचार आज भी भारतीय शैक्षिक परिस्थितियों में अत्यन्त प्रासंगिक है। समाज के विभिन्न क्षेत्रों और स्तरों पर आज जो अन्धकार एवं निराशा हमें घेरे हुए हैं, उसमें आशा की किरण शिक्षा–संस्थाओं तथा शिक्षकों से ही प्राप्त हो सकती है। उन्होंने शिक्षा संस्थाओं को राष्ट्र का निर्माता स्वीकार किया है। समाज के भविष्य का निर्माण करने वाले अध्यापकों को समुचित सम्मान देना होगा।

•पाठ्यक्रम अध्ययन :

औपचारिक पाठ्यक्रम पर विचार करते डॉ. राधाकृष्णन् तीन प्रकार की पाठ्यवस्तु पर बल देते हैं– सामान्य शिक्षा, उदार शिक्षा व व्यावसायिक शिक्षा। हम अपनी सूचना और अनुभव के आधार पर सोचते, निर्णय और कार्य करते

हैं। अगर वे सीमित हो जाये तो हमारा विश्व बहुत छोटा जो जायेगा। विद्यार्थी को सफल बनाना और प्रोत्साहित करना यथार्थता और सिद्धान्तों का विद्धतापूर्ण उत्तम सूचना देना यह सब सामान्य शिक्षा का कार्य है, जिससे कि विद्यार्थी को प्रतिनिधि और उपयोगी तत्व मिल सकें, जिस पर विद्यार्थी अपने विचार, निर्णय और कार्य आधारित कर सकें, रूचि और महत्व के क्षेत्र में सचेत हो सके। सामान्य शिक्षा में अध्यापक को ऐसी पाठ्य वस्तु तैयार करवाते समय केवल अपना ही क्षेत्र नहीं देखना चाहिये बल्कि यह ध्यान में रखना चाहिये कि विद्यार्थी द्वारा सम्पूर्ण क्षेत्र को घेरा जाये। आधुनिक समय में शुद्ध विज्ञानों के ज्ञान विस्फोट ने परिधि को अत्यधिक विस्तृत कर दिया है इसलिये आज बालक का बाह्य वातावरण अत्यन्त विशाल और जटिल हो गया है। डॉ. राधाकृष्णन् ने पाठ्यक्रम के अन्तर्गत सामान्य शिक्षा का महत्व बताते हुए कहा कि एक ज्ञान निहित पुस्तक अशिक्षित व्यक्ति के लिये मात्र काला दाग लगा हुआ एक कागज है। बिना सामान्य ज्ञान के व्यक्ति के लिये विभिन्न प्रकार की बढ़ती हुए संसार की रूचियाँ रहस्यात्मक या निरर्थक अथवा अस्तित्वहीन है। सामान्य ज्ञान वाले का निरन्तर ज्ञान में अभिवृद्धि हो, इसके लिये हर दिशा में देखने के लिये अवसर होने चाहिए जिनसे वह जीवन के अधिकांश मौलिक पदार्थों में अर्थ देख सकें तथा उसमें रूचि प्राप्त कर सकें। डॉ. राधाकृष्णन् ने देश की आवश्यकताओं के अनुरूप शिक्षा का प्रतिपादित किया है। आधुनिक युग की आवश्यकता के अनुसार वे विज्ञान और शिल्प की शिक्षा को आवश्यक मानते हैं। शिक्षा के पाठ्यक्रम में दर्शनशास्त्र, अंकगणित, समाजविज्ञान, कृषिविज्ञान, अर्थशास्त्र, राजनीतिशास्त्र, धर्मशास्त्र, साहित्य आदि सभी को स्थान देना चाहते है। शिक्षा के क्षेत्र में प्रत्येक विषय का अपना पृथक महत्व है। दर्शनशास्त्र बीच के वास्तविक ध्येय को समझने में सहायक है। साहित्य आध्यात्मिक दृष्टि और मानव के बीच में सेतु है। अंकगणित की सभी प्रकार के शोध में आवश्यकता पड़ती है। कृषि विज्ञान तथा औद्योगिक कलायें व्यावसायिक सफलता और भौतिक समृद्धि में सहायक है। अर्थशास्त्र, राजनीतिशास्त्र, और धर्मशास्त्र व्यक्तिगत और सामाजिक नियम बनाने में सहायता करते हैं। डॉ. राधाकृष्णन् ने बुनियादी शिक्षा की प्रशंसा करते हुए लिखा है कि वह विद्यार्थी का दैनिक जीवन से सम्पर्क कराती है। यह शारीरिक शिक्षा का महत्व समझाती है। शरीर, मानव आत्मा की अभिव्यक्ति का साधन है, इसलिये भौतिक ठीक प्रकार से होनी चाहिये। प्रत्येक विद्यार्थी अपने दैनिक जीवन में विज्ञान या अर्थशास्त्री अथवा साहित्य का विद्यार्थी नहीं होता। इनका मुख्य संबंध माता–पिता व पड़ौसी तथा समाज से होता है। उनकी रूचि राजनीति, व्यावसायिक तथा सांस्कृतिक क्षेत्रों में होती है। अतः विद्यार्थी को विभिन्न क्षेत्रों के लिये तैयार होना चाहिये। शिक्षा की मौलिकता एक दूसरे से जुड़ी होनी चाहिये जिससे किसी भी व्यक्ति का सर्वांगीण विकास हो सके।

•शिक्षण सिद्धान्त

राधाकृष्णन् का दर्शन जहाँ **"जीने का तरीका"** और शिक्षा के उद्देश्य **"आत्म विकास"** की बात करता है वहाँ शिक्षण उपागम पद्धति में **"जीने की कला"** का महत्व परिलक्षित होता है। शैक्षणिक प्रक्रिया में रचनात्मकता को विशिष्ट तथा आदरपूर्ण स्थान देने का प्रस्ताव करते है। डॉ. राधाकृष्णन् ने शैक्षिक उपागम हेतु शिक्षण के निम्न सिद्धान्तों पर बल दिया–

1. बालक की स्वतन्त्रता : डॉ. राधाकृष्णन् के स्वतन्त्रता संबंधी विचारों में व्यक्तिवाद तथा आदर्शवाद दोनों का सम्मिश्रण मिलता है। उनके अनुसार बालक के सामने स्वतन्त्रता का वातावरण प्रस्तुत करना चाहिये जिससे वह अधिक से अधिक ज्ञान प्राप्त कर सके। उनका विश्वास था कि नियन्त्रित वातावरण में विकास कुण्ठित हो जाता है। उनके अनुसार "स्वतन्त्रता ही मानव की सृजन शक्ति के विकास की कुंजी है। मनुष्य ईश्वरीय आत्मा है इसलिये आवश्यक है कि शरीर, मन तथा आत्मा की शक्तियों और गुणों का विकास किया जाये। जिससे आध्यात्मिक व्यक्तित्व का साक्षात्कार किया जा सकें।"

2. बालक के प्रति प्रेम तथा सहानुभूति : डॉ. राधाकृष्णन् के अनुसार बालक के साथ प्रेम तथा सहानुभूति का व्यवहार करना चाहिये। इससे वह स्वाभाविक रूप से विकसित होता रहता है। डॉ. राधाकृष्णन् के मतानुसार बालक के स्वतन्त्र एवं स्वस्थ विकास के लिए आवश्यक है कि अध्यापक एवं माता–पिता द्वारा उन्हें अपनत्व प्राप्त हो क्योंकि इस भाव से प्रेरित हो बालक अपने मन में दबी जिज्ञासा तथा महत्वाकांक्षा को बाहर लायेगा। जिससे उसके अन्तर्निहित क्षमताओं को जानकार उसके व्यक्तित्व के अनुसार शिक्षा प्रदान की की जा सके।

3. मातृभाषा द्वारा शिक्षाः डॉ. राधाकृष्णन् ने इस बात पर जोर दिया है कि बालक तक शिक्षा पहुँचने का माध्यम मातृभाषा होनी चाहिए। इससे वह कठिन से कठिन विषयों को भी आसानी से समझ सकता है। उन्होंने भारतीय भाषाओं को शिक्षा का माध्यम बनाने की सिफारिश करते हुए कहा कि "यह कभी भी गम्भरीरता से नहीं सोचा जा सकता कि अंग्रेजी भारत की जन भाषा बन सकती है। इसका कारण यह है कि विदेशी भाषा के माध्यम से बच्चों में कभी–भी मौलिक चिन्तन का विकास नहीं किया जा सकता।"

4. शिक्षा बालक की रूचि के अनुसार : डॉ. राधाकृष्णन् के अनुसार शिक्षक को चाहिये कि बालक की रूचियों का अध्ययन करे तथा उनके अनुसार उसकी शिक्षा की व्यवस्था करे। ऐसा करने में बालक की शिक्षा के प्रति रूचि बढ़ती रहेगी, अन्यथा वह पढ़ना छोड़ देना। उनके अनुसार बालक को वही विषय प्रमुख रूप से पढ़ाना चाहिए जिनमें उनकी रूचि हो, इस प्रकार वह उस क्षेत्र में अपनी क्षमता और योग्यता के साथ तीव्र गति से आगे बढ़ता रहेगा।

5. स्वप्रयत्न तथा स्वानुभव द्वारा शिक्षा : डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन् ने बताया कि बालक को स्वानुभव द्वारा सीखने पर अधिक से अधिक अवसर प्रदान किये जायें। इस प्रकार सीखा हुआ ज्ञान बालक के व्यक्तित्व का स्थायी अंग बन जाता है। ऐसी शिक्षा वास्तविक तथा लाभप्रद होती है।

6. अनुकरण द्वारा सीखना : डॉ. राधाकृष्णन् ने बताया कि बालक अनुसरण करके सीखता है। यदि बालक के कच्चे मन के सामने अच्छे और नैतिकता से संबंधित कार्य किये जायें तो बालक उसे अनुकरण करके सीखता है। अतः बालक को अगर कुछ सीखाना है तो आवश्यक है कि उसके सामने अनुकरणीय कार्य प्रस्तुत करना चाहिये।

7. शिक्षा बालक की प्रकृति के अनुसार : डॉ. राधाकृष्णन् के अनुसार प्रत्येक बालक में कुछ ईश्वरीय देन होती हैं तथा कुछ उसकी प्रतिभा भी। उसकी आत्मा को सर्वोत्तम रूप से विकसित करने के लिये उसे उसकी प्रकृति के अनुसार विकसित होने के अवसर मिलने चाहिए। उनका मानना है कि यदि बालक को उसकी व्यक्तिगत विभिन्नताओं को ध्यान में रखकर शिक्षा प्रदान की जाये तो उसकी विशेष क्षमता तथा कौशल को विकसित करने में सहायक सिद्ध होगी।

अध्ययन से प्राप्त निष्कर्ष

- शोधकर्त्ता ने अपने अध्ययन में पाया कि शिक्षा को जीवन से पृथक नहीं किया जा सकता इसलिए शिक्षा जीवन के अनुसार ही होनी चाहिए अर्थात् शिक्षा मनुष्य एवं प्रकृति से संबंधित होनी चाहिए जबकि वर्तमान में शिक्षा का जीवन से कोई तालमेल नहीं किताबी ज्ञान को ही शिक्षा माना जा रहा है।
- शोधकर्त्ता ने पाया कि बालक की शिक्षा प्राकृतिक ढंग से होनी चाहिए, इससे बालक और प्रकृति एवं वातावरण के बीच सामंजस्य स्थापित होगा और बालक वास्तविक जीवन या संसार का ज्ञान प्राप्त कर सकेगा। जबकि वर्तमान में बालक को चारदीवारी विद्यालयों में बंद कर शिक्षा के नाम पर औपचारिकता निभाई जा रही है।
- शोधकर्त्ता ने पाया कि शिक्षा का माध्यम मातृभाषा होनी चाहिए क्योंकि मातृभाषा द्वारा ही सम्पूर्ण राष्ट्र को अच्छी तरह शिक्षित किया जा सकता है और जीवन के अनन्त मूल्यों की प्राप्ति की जा सकती है, वर्तमान में जो पब्लिक स्कूलों में शिक्षा दी जा रही है उसमें न केवल उच्च शिक्षा बल्कि प्राथमिक शिक्षा भी अंग्रेजी माध्यम में दी जा रही है।
- वर्तमान शिक्षा पाठ्यक्रम के अनुसार ही आदर्शों, परम्पराओं, प्रथाओं और रीति–रिवाजों को स्थान दिया जाना चाहिये।
- शोधकर्त्ता ने अपने अध्ययन में पाया कि शिक्षार्थी शिक्षक संबंध, पिता–पुत्र तुल्य तथा शिक्षण विधियाँ, मनोवैज्ञानिक तकनीकों पर आधारित होनी चाहिए।
- डॉ. राधाकृष्णन ने शिक्षा का केन्द्र विद्यार्थी को माना है। अतः विद्यार्थी में नैतिक, बौद्धिक, आध्यात्मिक, सामाजिक, व्यावसायिक आदि मूल्यों का संचरण करने का प्रयास करना चाहिए।
- शोधकर्त्ता ने अपने शोध अध्ययन में पाया कि डॉ. राधाकृष्णन के धार्मिक शिक्षा संबंधी विचार बड़े ही व्यापक थे। वे किसी एक धर्म की शिक्षा प्रदान करने के पक्ष में नहीं थे वे धर्म को साम्प्रदायिकता से पृथक रखना चाहते थे। वे धार्मिक अन्धविश्वासों एवं बाह्य आडम्बरों में भी विश्वास नहीं करते थे।
- उनके अनुसार शिक्षण संस्थाओं का मुख्य उद्देश्य विद्यार्थियों को प्रकृति–प्रेम, मानवतावाद एवं समन्वय की शिक्षा प्रदान करना होना चाहिए।

संदर्भ

1. राजेन्द्र प्रसाद श्रीवास्वत : भारत के महान शिक्षा शास्त्री, प्रकाशन विभाग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, 1942
2. राधाकृष्णन, एस : एजूकेशन पालिटिक्स एण्ड वार, पूना, 1942
3. राधाकृष्णन, एस : भारत और विश्व, अशोक प्रकाशन, दिल्ली, 1949

4. प्रेसीडेन्ट राधाकृष्णन : स्पीचेज एण्ड राइटिंग्स, पब्लि. डिवी., गवर्नमेंट ऑफ इण्डिया, 1960
5. विद्यालंकार, अवनीन्द्र कुमार : राष्ट्रपति राधाकृष्णन, 1965
6. रस्क, आर.आर. : शिक्षा के दार्शनिक आधार, हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 1972
7. ओड, लक्ष्मी के. : शिक्षा की दार्शनिक पृष्ठभूमि, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, 1973
8. राधाकृष्णन, सर्वपल्ली : रचनात्मक जीवन, सरस्वती विहार, नई दिल्ली, 1979
9. शर्मा, रामनाथ : समकालीन भारतीय शिक्षा दार्शनिक, एटलांटिक पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, 1996
10. सिंह, परमेश्वर प्रसाद : भारत मे महान शिक्षा शास्त्री सन्मार्ग प्रकाशन, दिल्ली, 1997
11. पाण्डेय, रामशकल : विश्व के श्रेष्ठ शिक्षा शास्त्री, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, 1999
12. राधाकृष्णन, सर्वपल्ली : हमारी संस्कृति, हिन्द पॉकेट बुक्स, प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली, 1999
13. पाण्डेय, रामशकल : शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशास्त्री पृष्ठभूमि, श्री विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा
14. सिंह, ओ.पी. : शिक्षा दर्शन एवं शिक्षा शास्त्री, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद